चिपको आन्दोलन

[मानव जाति की सुरक्षा के लिए वन-संपदा को बचाने के देवभूमि उत्तराखंड में पेड़ों पर चिपकने के अद्‌भुत आन्दोलन की कहानी]

लेखक :

सुन्दरलाल बहुगुणा

प्रकाशक :

गढ़वाल सभा रजि०

रामनगर, सहारनपुर

चिपको आन्दोलन

[मानव जाति की सुरक्षा के लिए वन-संपदा को बचाने के देवभूमि उत्तराखंड में पेड़ों पर चिपकने के अद्‌भुत आन्दोलन की कहानी]

लेखक :

सुन्दरलाल बहुगुणा

प्रकाशक :

गढ़वाल सभा रजि०

रामनगर, सहारनपुर

प्रथम आवृति] १९७४ [मूल्य ५० पैसे

प्राप्ति स्थान—
कालिज बुक डिपो
सुभाष बाजार, सहारनपुर

लेखक—
सुन्दरलाल बहुगुणा
नवजीवन आश्रम
डा० सिलियारा Via धनसाली
टिहरी-गढ़वाल, उ० प्र०

मुद्रक—
नवभारत प्रिंटिंग प्रेस
मिसरान (खालापार) सहारनपुर
फोन : ५३३४

'चिपको' आन्दोलन

पिछले अठारह महीनों से उत्तराखन्ड में वन-सम्पदा की रक्षा और वन-सम्पदा की ठेकेदारी लूट को समाप्त कर उसके स्थान पर वनवासियों को जीविका का न्यायपूर्ण अधिकार दिलाने व शोषणमुक्त करने के लिए प्रारम्भ हुए 'चिपको' आन्दोलन को इतने थोड़े समय में बहुत प्रसिद्धि मिली है। इसके लिए केदारघाटी, जोशीमठ, गोपेश्वर और उत्तरकाशी क्षेत्र की जनता तथा वहाँ के सार्वजनिक कार्यकर्ता बधाई के पात्र हैं, जिन्होंने अपने अथक परिश्रम व त्याग के द्वारा आन्दोलन की ज्योति को निरन्तर जलाये हुए रखा। श्री चण्डीप्रसाद भट्ट, जो इस आन्दोलन के मुख्य-सञ्चालक रहे हैं, केदारघाटी के श्री केदारसिंह, जोशीमठ क्षेत्र के प्रमुख श्री गोविन्दसिंह रावत और उनके सहयोगी कई कार्यकर्त्ता भाई-बहिनों ने स्वयं को जला कर इस ज्योति को जीवित रखा है। हम अपने लोकप्रिय लोकगायक श्री घनश्याम 'सैलानी' जी को नहीं भूल सकते, जिनका 'चिपको' आन्दोलन का लोकगीत लोग झूम-झूम कर गाते हैं और स्वयं गाँव-गाँव घूम कर लोगों को प्रेरित करते रहे हैं। शराबबन्दी आन्दोलन की अग्रणी ७० वर्षीय वृद्धा माता श्यामादेवी जी क्या केदारघाटी और क्या जोशीमठ—सब ही जगह घूम आई हैं। रेणी में श्रीमती गौरादेवी के नेतृत्व में महिला आन्दोलनकारियों का एक सक्रिय दल खड़ा हो गया है। 'चिपको' आन्दोलन ने पत्रकारों को प्रेरणा दी है और केवल उत्तराखण्ड के स्थानीय पत्र ही नहीं, जो जन-आकांक्षाओं को आगे बढ़ाने में हमेशा अग्रणी रहे हैं, देश भर के विभिन्न भाषाओं के पत्रों ने इस आन्दोलन को प्रकाशन दिया है, अग्रलेख लिखे हैं। 'दिनमान और 'धर्मयुग' ने इस पर विस्तार से प्रकाश डाला है। 'टाइम्स आफ

इण्डिया' के ख्यातनामा पत्रकार श्री श्यामाचरण काला की सशक्त लेखनी इस आन्दोलन पर उठी है। राजनैतिक पक्षों ने इसका स्वागत किया है। उ० प्र० के मुख्य मंत्री माननीय श्री हेमवतीनन्दन जी बहुगुणा ने, जो पहले से ही इसके बारे में जानकारी रखते थे, आन्दोलनकारियों से विस्तृत चर्चा करके वन-नीति में कई महत्वपूर्ण परिवर्तनों के शुभारम्भ का संकेत देकर अपनी सूझबूझ और दूरदर्शिता का परिचय दिया है। उन्होंने कहा है, "वनों की सुरक्षा के मुकाबले हमारे सामने राज्य की आमदनी का प्रश्न गौण है।" सन्त विनोबा जी ने इस आन्दोलन को केवल अपना आशीर्वाद ही नहीं दिया है, वनों के प्रश्न पर सारे देश की जनता को जगाने की आवश्यकता पर बल दिया है। दिव्य जीवन सङ्घ के परमाध्यक्ष स्वामी चिदानन्द जी इसके मुख्य प्रशंसकों में से हैं।

इसके बावजूद भी इस आन्दोलन के सम्बन्ध में कई प्रश्न उठ खड़े हुए हैं। मुख्य मन्त्री जी के साथ वार्ता के पूर्व उ० प्र० के वन-सचिव की ओर से एक विज्ञप्ति प्रसारित की गई थी कि, "चिपको' आन्दोलन अनुचित है। वन विभाग द्वारा रेणी में वन-विशेषज्ञों द्वारा बनाई गई योजना के अनुसार पेड़ों की कटाई हो रही है और आन्दोलनकारियों के पास यदि कोई उपयोगी सुझाव होंगे तो उन पर विचार किया जावेगा।" इसलिए यह आवश्यक है कि 'चिपको' आन्दोलन के उद्देश्यों और उसे निरन्तर जारी रखने के औचित्य पर नये सिरे से प्रकाश डाला जावे। ३० मई को तिलाड़ी के शहीदों का स्मृति-दिवस आ रहा है। ४४ वर्ष पूर्व यमुना के तट पर उत्तरकाशी जिले के बड़कोट गाँव में तिलाड़ी के मैदान में वन-सम्बन्धी अधिकारों के लिए जूझते हुए सामन्ती गोलियों के शिकार हुए इन वीरों की पुण्य-स्मृति सन् १९६९ में इसी मैदान में हुई ग्राम स्वराज्य की घोषणा के दिन से यह दिवस 'वन दिवस' के रूप में मनाया जाता है। वास्तव में 'चिपको' आन्दोलन की बुनियाद वनवासियों के वन-अधिकारों की घोषणा (अन्यत्र प्रकाशित) के साथ ही पड़ गई थी। यह घोषणा ३० मई को गाँव-गाँव में दुहराई जावेगी।

आध्यात्मिक प्रेरणा

'चिपको' आन्दोलन वनवासी जनता की मांगों का आर्थिक आन्दोलन मात्र नहीं है, जो कुछ मांगों के पूरा होने पर समाप्त हो जावे, बल्कि इसकी मुख्य प्रेरणा तो मनुष्य के पेड़ के साथ प्रेम की भावना में है। मनुष्य-मनुष्य से प्रेम करता है, उसके बाद अपने सम्पर्क में आने वाले प्राणियों से प्रेम करता है और उससे भी एक सीढ़ी ऊपर चढ़कर पेड़-पौधों और वनस्पति से प्रेम करता है। वनवासियों के लिए यह स्वाभाविक है, क्योंकि ऐसे पेड़ों को जिनकी छाँह में उन्हें आराम मिलता है या विशेष लाभ मिलता है, कई जगह नाम से पुकारते हैं। हमारी भौतिक सभ्यता ने पेड़ को एक आर्थिक उपभोग की वस्तु मात्र बना दिया, हम पेड़ को प्राणी मानना भूल गये। जिस दिन मण्डल के जंगल में अंगू का पेड़ बचाने के लिए गाँव के लोग पेड़ों पर चिपकने के लिए गये तो एक ग्रामीण ने अपनी भावनाएं व्यक्त करते हुए कहा, "अगर जंगल में एक माँ और बेटा जा रहे हों, एकाएक सामने बाघ या भालू आ जावे तो माँ बेटे को बचाने के लिए उसको छाती से चिपका लेगी और उसके ऊपर लेट जावेगी।" अब यह भावना वेद के इस वाक्य से कितनी ऊपर है "एक पेड़ दस पुत्रों के समान है।"

चाहे मांगें मनवाने के लिए ही क्यों न हो, पेड़ पर चिपक कर उसकी रक्षा करने और उसकी धड़कनों के साथ अपने दिल की धड़कनों को मिलाने के आन्दोलन का अभिनव तरीका 'सर्वोदय' विचार की देन है। पहाड़ों में वन समस्या उसी दिन प्रारम्भ हुई जब सरकार ने वनों को अपने अधिकार में लिया और वनवासियों को उनसे रोजगार पाने के अधिकार से महरूम कर दिया। यह हृदयहीन कदम दूध पीते बच्चों को माँ की गोद से उठा कर फेंक देने के समान था। वनों से वनवासियों को केवल जलाऊ लकड़ी, घास और इमारती लकड़ियाँ ही नहीं मिलती, खाने के लिए कन्द, मूल और फल भी मिलते हैं। पीने के पानी के स्रोत वहाँ से निकलते हैं। इस जन्मजात अधिकार के अपहरण से वनों और

वनवासियों के बीच वैमनस्य होना स्वाभाविक था, परन्तु पुराने सम्बन्धों की भूमिका इतनी पवित्र और मधुर थी कि वनवासियों के बीच वैमनस्य होना स्वाभाविक था, परन्तु पुराने सम्बन्धों की भूमिका इतनी पवित्र और मधुर थी कि वनवासियों की भावनायें अपना क्षोभ प्रकट करने के लिए वनों को तबाह करने के बजाय वनों की रक्षा करने के लिए स्वयं कष्ट झेलने के रूप में प्रकट हुई हैं। रेणी गाँव की महिलाएं २७ मार्च को पेड़ों पर पड़ने वाली ठेकेदार के श्रमिकों की कुल्हाड़ियाँ अपनी पीठ पर सहने के लिए गई तो उन्होंने कहा, "यह जंगल हमारा मायका है, हम इसकी रक्षा करने के लिए कटिबद्ध हैं।" स्त्रियाँ संकट के समय मायके का स्मरण करती हैं। अकाल और अभाव के दिनों वे इस जंगल से प्राप्त वनस्पति से अपने परिवार का भरण-पोषण करती हैं।

विज्ञान की मांग

वनों के अन्दर 'जङ्गल कानून' चलता है। एव बार ठेकेदार को जंगल के अन्दर प्रवेश करने का परमिट मिला नहीं कि फिर मनमानी लूट चलती है। यद्यपि नियमानुसार वन-सम्पदा का दोहन वन विशेषज्ञों द्वारा बनाई गई कार्य योजना के अनुसार होता है, परन्तु हाल के वर्षों में हिमालय क्षेत्र में वनों की कटाई के कारण आने वाली प्रलयङ्कारी बाढ़ों और भूस्खलन ने यह साबित कर दिया है कि पुराने अनुमान गलत हो गये हैं। यदि ये सही होते तो वनों के वैज्ञानिक ढंग से कटने के बाद बाढ़ें नहीं आनी चाहिए थी। वनों की कार्य योजनाएं ३० वर्ष पुरानी हैं। ३० वर्षों में विकास योजनाओं के लिए और मोटर सड़क के विस्तार के साथ-साथ वनों की अपार क्षति हुई है। हर बरसात में पहले तो देश की बड़ी-बड़ी नदियों के किनारों पर मैदान में बसे हुए लोगों के लिए ही बाढ़ के रूप में विपत्ति का सन्देश लेकर आती थी लेकिन हाल के वर्षों में—सन् १९७० से तो प्रति वर्ष पहाड़ी गाँव इतने असुरक्षित हो गये हैं कि चमोली जिले के मोहनखाल के आसपास के ग्रामीणों ने जहाँ पिछली बरसात में भूस्खलन से तबाही हुई थी, मुझसे एक बात कही, "हम अगली

बरसात में कहाँ रहेंगे ?" बेलाकूची, गेंवला, मांतली, धराली, केलसू भंकोली (उत्तरकाशी), नन्दगाँव, पिलखी (टिहरी-गढ़वाल), राई-आगर (पिथौरागढ़) के घाव अभी ताजे हैं। भाबर की कोई सूखी नदी ऐसी नहीं, जिसमें मीलोंतक की हरी-भरी क्यारियों को रेड़े में न बदल दिया हो।

ये तो प्रत्यक्ष दिखाई देने वाली तबाही के कुछ नमूने हैं, परन्तु जंगलों के कटने से मौसम में धीरे-धीरे जो परिवर्तन आ रहे हैं उनको भी नजरंदाज नहीं किया जा सकता है। वर्षा या तो कम हो रही है या समय पर नहीं हो रही है। पानी के स्रोत पतले पड़ गये हैं या सूख रहे हैं। तथाकथित विकसित और उद्योग-प्रधान देशों में तो वन-विनाश के भयङ्कर दुष्परिणाम स्पष्ट सामने आये हैं। वहाँ पर शुद्ध हवा और साफ पानी का अभाव हो गया है। जापान में आज नारा है, 'हमें शुद्ध हवा और साफ पानी चाहिए।" विश्व के वैज्ञानिकों ने मानव जाति के सामने खड़ी जिन समस्याओं की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है, उनमें पहला नम्बर वातावरण के प्रदूषण का है। इसका सीधा सम्बन्ध वनों की सुरक्षा से है। हाल ही में मनुष्य और प्रकृति के बीच के सम्बन्धों में संतुलन के शास्त्र—इकालाजी—की बहुत चर्चा है। यह शास्त्र विज्ञान की एक नई शाखा है, जिसका उदय वातावरण के प्रदूषण की परिस्थिति में हुआ है। भले ही कुछ वर्ष पहले वैज्ञानिकों ने वनों को काटने के लिए योजनायें बनाई हों, परन्तु आज तो विज्ञान के जो आद्यतन निष्कर्ष हैं, समाज की जो आवश्यकतायें हैं उनको यदि अपनी क्षणिक भोग-लिप्सा को तृप्त करने के लिए वनों का असीमित दोहन करके भुला देंगे तो हमारी पीढ़ी को ही उसके कुफल भोगने पड़ेंगे। आज जो पेड़ खड़े हैं वे हमारे पूर्वजों की पीढ़ियों के त्याग और तपस्या के फल हैं। उन्होंने अपनी आवश्यकताओं पर अंकुश रखा। वह धार्मिक अन्धविश्वास का युग था। देवद्वार के पेड़ों के साथ देवी-देवताओं का सम्बन्ध जोड़ा और इस प्रकार इनकी रखवाली की। हम उनकी तपस्या के मीठे फल खा रहे हैं, परन्तु अगली पीढ़ी के लिए क्या सर्वनाश छोड़ कर जावेंगे ? इसलिए 'चिपको'

आन्दोलन वन-सम्पदा के प्रति संयम बरतने के वैज्ञानिकों और वेदान्ती सन्तों के सन्देश पर अमल करने के लिए जनता और सरकार का ध्यान आकर्षित करने का यह एक सौम्य तरीका है। इस वर्ष वेदान्ती सन्त स्वामी रामतीर्थ जी की जन्म शताब्दी है। उनका नारा था, 'अरण्य की ओर चलो'। उसका अर्थ ही यह है कि मानव जाति के भौतिक और आत्मिक सुख की प्राप्ति में वन-सम्पदा का महत्वपूर्ण स्थान है।

ठेकेदारी प्रथा का अन्त हो

राजनीति के क्षेत्र में हमारा आदर्श लोकतन्त्र है और आर्थिक क्षेत्र में समाजवाद। अब समाजवाद का बहुत सादा अर्थ है शोषण मुक्ति। आज वन-सम्पदा के दोहन की ठेकेदारी पद्धति प्रचलित है। इस पद्धति से क्या होता है? इसके ज्वलन्त प्रमाण हिमाचल पद्धति से लीसा निकालने के जङ्गल हैं। इस पद्धति के अनुसार चीड़ के पेड़ों से लीसा निकालने के लिए एक निश्चित अवधि के लिए ठेकेदारों को जंगल बेचे जाते हैं। लीसा निकालने का काम उत्तराखण्ड में ५५ वर्षों से चलता है। इसे वन विभाग स्वयं अपनी देख-रेख में मेटों के माध्यम से चलाता था। ज्यों ही वहाँ के वनों की लीसा देने की क्षमता कम हुई, पहले तो अधिक उत्पादन के नाम पर यमुना और टौंस घाटियों में वहाँ के ठेकेदारों के द्वारा लीसा निकालने का काम शुरू हुआ। अब यह पद्धति उत्तरकाशी, टिहरी और चमोली जिलों में फैल गई है। ठेके की अवधि में पेड़ों पर गहरे घाव करके अधिक से अधिक लीसा निकालने का तात्कालिक परिणाम यह हुआ कि यमुना वन प्रभाग में तीन वर्षों में १५ हजार चीड़ के पेड़ हवा से टूट गए। एक उच्च वनाधिकारी ने मुझसे कहा कि यमुना वन-प्रभाग में जरमोला और पुरोला के बीच इस प्रकार ढहे हुए पेड़ों के कारण यह खूबसूरत वन पेड़ों के कब्रिस्तान में बदल गया था। ठेकेदारी पद्धति के विस्तार के साथ-साथ क्या हम नये-नये कब्रिस्तानों का निर्माण होने देंगे? यह असम्भव है कि उनकी इस कार्यवाही को नियन्त्रित किया जा सके।

ठेकेदारी पद्धति से केवल वनों का ही नहीं वनवासी वनश्रमिकों का भी शोषण होता है। जंगलों में लकड़ी का चिरान-कटान करने वाले श्रमिकों को अमानवीय परिस्थितियों में काम करना पड़ता है। ठेकेदारों द्वारा दी जाने वाली पेशगी के बोझ के नीचे, जो कभी समाप्त नहीं होती है, वे जीवन भर दबे हुए रहते हैं। उनकी मजदूरी की दरें इतनी कम हैं कि वे कभी ऋण-मुक्त नहीं हो सकते। इस जोखिम के काम में दुर्घटना-ग्रस्त होने पर वे मुआवजा पाने के अधिकारी नहीं हैं, क्योंकि वे श्रम कानूनों की परिधि से बाहर हैं। अब इस दुहरे शोषण की समाप्ति का एक ही रास्ता है कि वन-सम्पदा के दोहन की ठेकेदारी पद्धति समाप्त हो। भारत सरकार ने तो १२ मई १९५२ के अपने वन नीति के प्रस्ताव में यह स्वीकार किया है। योजना आयोग ने भी प्रथम पञ्चवर्षीय योजना में ठेकेदारों के स्थान पर गुजरात के नमूने की वनश्रमिक सहकारी समितियाँ कायम करने का राज्यों को निर्देश दिया था। अब हम किस समाजवाद की ओर बढ़ रहे हैं, जिसमें प्राकृतिक सम्पदा का एकाधिकार और श्रमिकों के शोषण की खुली लूट करने का मौका ठेकेदारों को दिया गया है। ठेकेदारी प्रथा को तत्काल समाप्त कराना 'चिपको' आन्दोलन की पहली मांग है। इसके लिए वन श्रमिकों की सहकारी समितियों का संगठन और उन्हें मान्यता देकर होड़ के क्षेत्र से बाहर रखने की घोषणा सरकार को करनी होगी।

वनोद्योगों से रोजगार

वनों से प्राप्त परम्परागत रोजगार समाज के बदलते हुए स्वरूप के साथ समाप्त हो रहे हैं। अनादिकाल से वनवासी समाज पशुचारक रहे हैं। आज भी उत्तराखण्ड के दूरस्थ गाँवों में भेड़ और पशुपालन मुख्य व्यवसाय है, परन्तु चरागाहों पर बढ़ने वाले दबाव के कारण, चीड़ व देवदार आदि के व्यापारिक महत्व के वनों के विस्तार तथा कृषि-बागवानी के क्षेत्र के विस्तार के साथ-साथ पशुपालन का स्वरूप बदलना होगा। पशुओं के बड़े-बड़े टोले पालना अब सम्भव नहीं है। अब वन-सम्पदा से रोजगार का सबसे सुलभ साधन उस पर आधारित छोटी-

छोटी औद्योगिक इकाइयों की स्थापना ही हो सकता है। अभी तक हमारे देश की अर्थ-व्यवस्था कुछ इस प्रकार की रही है कि कच्चा माल पैदा करने वाले अविकसित क्षेत्रों की स्थिति अपेक्षाकृत विकसित क्षेत्रों के उपनिवेश की तरह रही है। उत्तराखण्ड में पैदा होने वाले लीसे के ऊपर आधारित कारखाने की स्थापना बरेली में, कागज के कारखाने की स्थापना सहारनपुर में व प्लाइवुड के कारखाने की स्थापना तराई के नगरों में की गई। अब पहाड़ों में वन-सम्पदा पर आधारित कारखानों के लिए आवाज उठने लगी है तो मैदान के बड़े कारखानों की नकल पहाड़ों में भी होने लगी है। पर्वतीय विकास निगम ने बरेली की लीसा फैक्टरी के नमूने की ५०-५० हजार मन वार्षिक क्षमता की फैक्टरियाँ चम्पावत और तिलवाड़ा में लगाने की योजना बनाई है। इस प्रकार की बड़ी फैक्टरियाँ वन क्षेत्रों में बिखरी हुई जनसंख्या को घर के नजदीक रोजगार देने में सफल नहीं हो सकती। उत्तरकाशी जिले में जनसंख्या का घनत्व १६ व्यक्ति प्रति वर्ग कि० मी०, चमोली में ३३ और पिथौरागढ़ में ४३ है। इस प्रकार के क्षेत्रों में बड़ी से बड़ी औद्योगिक इकाई विकास क्षेत्र स्तर से बड़ी नहीं होनी चाहिए, जिससे वनवासी अपने क्षेत्र में पैदा होने वाले कच्चे माल को पक्का बनाने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और उनमें वन-सम्पदा की सुरक्षा के प्रति दिलचस्पी पैदा हो सके। इसके अलावा उद्योगों के प्रबन्ध और व्यवस्था में किसी भी औद्योगिक इकाई के स्वामित्व और प्रबन्ध में कच्चा माल निकालने वाले लोगों, उस क्षेत्र के निवासियों और पक्का माल तैयार करने वाले श्रमिकों की साझेदारी आवश्यक है। बड़ी इकाई में इतने अधिक लोगों का किसी एक स्थान पर इकट्ठा होना ही सम्भव नहीं है। छोटी इकाइयों के विरोध में यह कहा जाता है कि उनमें आधुनिकतम यन्त्रों का उपयोग नहीं हो सकता, यह तो यान्त्रिकी को चुनौती देना है। आज जिस हद तक टेक्नालाजी का विकास हो गया है, उसमें छोटी इकाई के लिये उत्तम से उत्तम मशीनें बनाई जा सकती हैं। ५० हजार मन कच्चे लीसे से १०-१० हजार मन क्षमता वाले ५ छोटे कारखाने विकास क्षेत्र स्तर पर जंगल के निकट के गाँवों में चल सकते हैं।

वन-प्रशासन और वनवासी

एक और महत्वपूर्ण प्रश्न वन-प्रशासन के साथ स्थानीय लोगों को जोड़ने का है। वन क्षेत्रों में चलने वाले 'जङ्गल कानूनों' को देख कर ऐसा लगता है कि भारतीय लोकतन्त्र का क्षेत्र केवल वन-विहीन क्षेत्रों तक ही सीमित है। वन-क्षेत्रों का सबसे बड़ा हाकिम वन-रक्षक (पत्रावल) ही होता है। यद्यपि आग और अन्य प्रकार के नुकसान से वनों की रक्षा स्थानीय निवासी करते हैं, परन्तु उनके उत्पीड़न के सबसे बड़े कारण वन ही हैं। वन-प्रधान क्षेत्रों की कचहरियों में सैकड़ों मुकदमे उन पर चलते रहते हैं। कचहरी तक जाने की नौबत तो बहुत देर से आती है, पहले तो वनाधिकारी स्वयं ही उन्हें दन्ड देते हैं। इस परिस्थिति में बदलाव का एक ही रास्ता है कि गाँव स्तर से लेकर जिला-स्तर तक पंचायतराज संस्थाओं—ग्राम पञ्चायत, क्षेत्र समिति, जिला-परिषद—का वन-प्रशासन पर अंकुश रहे।

टिहरी रियासत में वनों के सुरक्षित रहने का एक और कारण था। रियासत की ओर से स्थानीय नवयुवकों को वन-विज्ञान की उच्च शिक्षा दिला कर वनाधिकारी नियुक्त किया गया। इन्हें पेय-जल, सिंचाई और यहाँ तक कि प्राइमरी स्कूलों की देखभाल आदि विकास कार्यों का जिम्मा भी सौंपा जाता था। इस प्रकार स्थानीय परिस्थितियों के जानकार लोगों के वन-प्रशासन में रहने से वे मानवीय सम्बन्धों को कायम रख सके। अब व्यापकता और अखिल भारतीयता की आड़ में पिछड़े हुए वनवासियों के लिए वन-सेवाओं में कोई संरक्षण नहीं। फलतः वनों के कठोर जीवन से बच कर शहरों की आराम की जिन्दगी बिताने वाले लोग वन-सेवाओं में पहुंच गये। उनके साथ वन-विभाग के दफ्तर भी वन क्षेत्रों से हटा कर मसूरी और चकरौता में स्थानान्तरित हो गए। इससे अधिक हास्यास्पद बात क्या हो सकती है कि उच्च वनाधिकारियों के कार्यालय देहरादून, मसूरी और नैनीताल की विलास नगरियों में हों? वनवासियों के जीवन से उच्च वनाधिकारियों का कोई सरोकार नहीं रह गया। मानवीय सम्बन्धों की स्थापना के लिए यह

आवश्यक है कि वन-प्रधान क्षेत्रों के शिक्षण में प्रारम्भ ही से वन-विज्ञान की शिक्षा को स्थान दिया जावे।

'चिपको' आन्दोलन की सफलता का नया संकल्प

केवल हिमालय क्षेत्र ही नहीं सारे देश और मनुष्य जाति की सुरक्षा के लिए आज पैसे के लालच के लिए तेजी से होने वाले वन-विनाश को रोकना मानव सेवा का सबसे बड़ा काम है। यदि वनों के प्रति हमारी पीढ़ी की उपेक्षा कायम रही तो अपने पूर्वजों से विरासत में पाये हुए हरे-भरे वनों के स्थान पर हम भावी पीढ़ी के लिए नंगे रेगिस्तान और पहाड़ छोड़ कर जावेंगे। पेड़ों को पनपाने का काम कोई १०-२० वर्षों का नहीं है। हिमालय क्षेत्र के जलस्रोतों का उपयोग बांध बना कर सिंचाई, विद्युत और बाढ़-नियन्त्रण की बहुद्देशीय योजनाओं के लिए हो रहा है। भावी समृद्धि की आकांक्षा से हम राष्ट्र की गाढ़ी कमाई इन योजनाओं में लगा रहे हैं, परन्तु केन्द्रीय जल और विद्युत शक्ति आयोग के एक अध्ययन के अनुसार भूस्खलन से आने वाले मलवे से भरने के कारण भारत के किसी भी बांध की उम्र ५० वर्ष से अधिक नहीं। इनको रोकने का एकमात्र तरीका नदियों के प्रस्रवण क्षेत्रों में वृक्षारोपण करना है, परन्तु इस वृक्षारोपण पर कितना खर्च होगा? केवल एक चौथाई क्षेत्र पर इस कार्यक्रम के लिए १२८० करोड़ रुपये की आवश्यकता होगी। इस प्रकार नये वन लगाने से पूर्व लगे हुए वनों को बचाना अधिक आवश्यक है। दुनिया की आँखों से दूर तथाकथित वैज्ञानिकों की पहाड़ों को पेड़ों का कटान व भारी मात्रा में लीसा निकाल कर सोना देने वाली मुर्गी का पेट चाक करने की आत्मघाती और पहाड़ों को नंगा बनाने की योजना के खिलाफ 'चिपको' आन्दोलन मानवता के पुजारियों का एक धार्मिक अनुष्ठान है और हमें आशा है कि ३० मई को तिलाड़ी के बलिदानियों की शहादत के अवसर पर गाँव-गाँव में लोग इसे सफल बनाने का नया संकल्प लेंगे।

परिशिष्ट १

जनता की सद्भावना, सहकारी समितियाँ और वन-श्रमिक

[भारत की राष्ट्रीय वन नीति—भारत सरकार का प्रस्ताव सं० १३-१/५२-F दि० १२-५-५२]

जहाँ वन सम्बन्धी कानून, शिक्षण और अनुसन्धान से वनों की सुव्यवस्था की बुनियाद बनती है वन्य क्षेत्रों के आसपास बसने वाली जनता का कल्याण और सद्भावना इस बुनियाद को ठिकाने के लिए स्थिर भूमि है। जनता के सहयोग और समर्थन के बिना अच्छे से अच्छे ध्येय से बनी हुई वन नीति की सफलता के लिए कम से कम अवसर है। उन्हें रिआयती मूल्य पर या निःशुल्क वन उपजें देने के अधिकार को स्वीकार कर लेना ही पर्याप्त नहीं है, लोगों में वनों के उपयोग के प्रति सीधी दिलचस्पी पैदा करना आवश्यक है।

विचौलियों का स्थान, जो अपने निजी लाभ के लिए वनों और स्थानीय श्रमिकों का शोषण करते हैं, धीरे-धीरे स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार बनाई जाने वाली वनश्रमिक सहकारी समितियों को लेना चाहिए।

परिशिष्ट २

बालगङ्गा वन श्रमिकों की जंगल के मालदारों व सरकार से मांग

हमें इन्सानों की तरह जीने का अवसर दो।

[दिनाङ्क ७-३-७४ होली के दिन श्री रामेश्वरप्रसाद पुरबाल, चिरानी की अध्यक्षता में घनाली (कांगड़, केमर) में हुई बैठक का प्रस्ताव सीताराम साहनी फर्म के मजदूरों द्वारा]

हम कांगड़ (बालगङ्गा रेंज) में चीरान, कटान, ढुलान, बहान और गिरान का काम करने वाले सब मजदूर यह निश्चय करते हैं कि मंहगाई के कारण, जबकि रुपये की कीमत सन् १९६० के मुकाबले केवल ३८ पैसा रह गई है, मजदूरी की पुरानी दरें हमें मान्य नहीं हैं, क्योंकि हाड़तोड़ मेहनत करने पर भी हमें वर्षों से पेशगी कर्जदारी से छुटकारा नहीं मिला। इसलिए मजदूरी को मौजूदा दरों में निम्नलिखित संशोधन तुरन्त किया जावे।

(१) गिरान—१·५० रु० की जगह ४ रु० प्रति पेड़।
चिरान—३ रु० की जगह ५ रु० प्रति सलीपर १२'×१०"×५"
ढुलान—२५ पैसा की जगह ५० पैसा प्रति ३०० कदम
नाली—७ रु० प्रति दिन।

(२) राशन की पुरानी दरें कायम रहें, लेकिन राशन की जांच-पड़ताल समय-समय पर स्वास्थ्य विभाग से कराई जावे। चिरान-ढुलान का काम बहुत मेहनत का है। घी नियमित रूप से मिलना चाहिए।

(३) बीमार पड़ने व दुर्घटनाग्रस्त होने पर इलाज का इन्तजाम फर्म की ओर से होना चाहिए। दुर्घटना में अपंग होने या मरने पर अन्य मजदूरों की तरह ७००० रु० हर्जाना देने का इन्तजाम हो। जंगल मजदूरों को श्रम कानून की सहुलितें मिलें। हमारे हितों की देखभाल के लिए श्रम-इन्सपेक्टर नियुक्त किया जावे।

हम सब जंगलात का काम करने वाले मजदूरों से इसी प्रकार का निश्चय करने की अपील करते हैं।

समिति के सदस्य

रामेश्वर पुरबाल, नावें–अध्यक्ष; केदारसिंह कांगड़; थपड़सिंह लस्याल गाँव; अतर्रासह इंदवाण गाँव; कलमसिंह कांगड; इन्दरसिंह गिठाण बांगर; कुशालसिंह, कल्हण गाँव––मन्त्री। दलेवसिंह, लस्याल गाँव–प्रतिनिधि।

महात्मा गांधी की जय। जंगल मजदूर––जिन्दाबाद।

परिशिष्ट ३

उत्तराखण्ड में वन

जिला	कुल क्षेत्रफल (कि० मी० में)	वन क्षेत्र	वन क्षेत्र का प्रतिशत
१. उत्तरकाशी	८०००	७०४४·६६	९०·१%
२. टिहरी-गढ़वाल	४४००	२६९५·४५	५९·६%
३. नैनीताल	६८००	३९०१·०८	५८·५%
४. चमोली	९१००	५२९२·८३	५८%
५. गढ़वाल	५४००	३२५१	६०%
३. देहरादून	३१००	१६७३·७८	५३·८%
७. पिथौरागढ़	७२००	२३७९·१३	३२·३%
८. अल्मोड़ा	६०००	४८५९·९०	६९·४%

लीसा वितरण

आई० टी० आर० कं०, बरेली	१,७०,००० कुन्तल
सहकारी संस्थाएं	३०,००० ,,
निजी इकाइयाँ	३०,००० ,,
नीलामी से बिक्री	२०,००० ,,

परिशिष्ट ४

वन-विनाश के कारण बाढ़ और भूस्खलन से तबाही

१. बेलाकूची व चमोली जिले के कई गाँव	जुलाई १९७०	पातालगंगा, हेलंग व गरुड़गंगा का वन कटा।
२. धराली, उत्तरकाशी	१९७०	धराली वन कटा।
३. गेंवला, बरसाली, उत्तरकाशी	१९७०	गेंवला वन कटा।
४. मातली, बरसाली, उत्तरकाशी	१९७१	मातली वन कटा।
५. केलसू भंकोली, उत्तरकाशी	१९५९	जंगल कटे और हजारों नाली जमीन बरबाद हुई
६. पिलखी, टिहरी	१९७२	पिलखी, वन कटा।

७. नन्दगाँव, टिहरी	१९७३	कोस्यार [इस वर्ष १९७४ में पुनः काटा गया।]
८. अगस्तमुनि व पोखरी विकास क्षेत्र, चमोली	१९७३	सड़क निर्माण व बांज काटकर देवद्वार का प्लांटेशन।
९. राई-आगर, पिथौरागढ़	१९७३	धारमन्या का बांज का वन कटने से तबाही।

इन दुर्घटनाओं में मरने वालों की अनुमानित संख्या १२०, पशुओं की संख्या ३००, खेती के नुकसान का कोई अनुमान नहीं।

झटपट जंगलु बचा

(र०—घनश्याम 'सैलानी')

झटपट जंगलु बचा।
नैं डाली नयां बण लगा।
कना बांजबुरांस छया।
रई मुरैण्डा सभी गया।
चीड़ देवद्वार ख्वैन।
मोटा मालदार ह्वैन।
सरकार से ईं जगा।
झटपट जंगलु बचा। नैं डाली नयां बण लगा॥
खाल्यों की डाली कटींगे।
गदन्यों को पाणी सुखींगे।
काफल किनगोड़ गैन।
कल हिंसरी डाली ख्वैन।
लेंगडु चलु ह्वैगे स्वा। झटपट जंगलु बचा।
नैं डाली नयां बण लगा॥

चिपको आन्दोलन—उद्बोधन गीत

र०—श्री घनश्याम 'सैलानी'

खड़ा उठा भै बन्दु सब कट्ठा होला,
तबाही से आज जंगलु बचौला।
ठेकेदारी प्रथा से जंगल कटीगे,
बुरा ऐग्या समाकाल बरखा हटीगे॥

पहाड़ों मां जंगलों की तबाही ह्वैगे,
जंगलों की कमाई मालदार खैगे।
सरकार मालदार जंगल कटै रै,
नयां पेड़ नयां बण क्वी नी लगै रै॥

लीसा का घौ लैगे पेड़ों मां गैरा,
हवा से जंगल उखडीगे सारा।
लीसा को कारखानु आज बरेली,
लीसा का उद्योग सब तैन खैली॥

बरषों बिटे हमुन बण पाल्या,
पीढ़ी दर पीढ़ी जंगल जग्वाल्या।
पूंजीपति जंगलों से पैसा कमौंदा,
पहाड़ी छोरा भैर भांडा मंजौदा।

चिपका पेड़ों पर अब न कटेण द्या,
जंगलों की सम्पति अब ना लुटेण द्या।
झटपट जंगलों को कानून बदला,
चटपट गौं गौं मां उद्योग सजला॥

पहाड़ों मां वन धोगों से बहु लाभ,
वनवासी जनता को जागलो भाग।
ऐ जालु पहाड़ों मां समाजवाद,
बजि जालु गौं गौं मां सर्वोदै नाद॥

वन-दिवस का घोषणा-पत्र

[३० मई १९३० को तिलाड़ी (जिला उत्तरकाशी) में वन सम्बन्धी अधिकारों की रक्षा के लिये गोलीकाण्ड में हुए शहीदों की स्मृति में 'वन-दिवस' १९६९ के अवसर पर जनता द्वारा स्वीकृत घोषणा-पत्र]

सृष्टि के आदिकाल से ही वन हमारे सांस्कृतिक और आर्थिक जीवन के आधार रहे हैं। वनों की रक्षा करना हमारा मुख्य कर्तव्य है और उनके द्वारा जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति करने तथा वन-उपजों से रोजगार पाने के अपने जन्मसिद्ध अधिकार की हम घोषणा करते हैं।

हमारी सुख समृद्धि के आधार वनों और हमारे बीच मधुर सम्बन्ध हमेशा कायम रहें। इसके लिए यह आवश्यक है कि वन-सम्पदा का पहला उपयोग बनों के निकट बसने वाली जनता की सुख समृद्धि के लिए होना चाहिए। इसके लिए दैनिक आवश्यकता एवम् ग्रामोद्योगों के काम में आने वाली वन उपजें सर्वसाधारण के लिए सुलभ हों तथा वनों से प्राप्त कच्चे माल से वनों के निकट ही उद्योग स्थापित हों।

वन उपजों की निकासी की ठेकेदारी पद्धति के स्थान पर स्थानीय वन श्रमिकों की सहकारी समितियाँ बनें।

वनों के प्रति ज्ञानयुक्त प्रेम पैदा करने के लिए वन-प्रधान क्षेत्रों में हर स्तर की शिक्षा में वनस्पति और जीव-विज्ञान की शिक्षा को समुचित स्थान मिले।

आज के इस पवित्र दिन पर हम तिलाड़ी के वीर शहीदों का आदरपूर्वक स्मरण करते हैं और उनको श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हैं। उनका शान्तिमय आन्दोलन और वीरतापूर्ण बलिदान हमें वन-सम्पदा एवं वन-सम्बन्धी मूल अधिकारों की रक्षा के लिए सतत् जागरूक और तत्पर रहने की प्रेरणा देता रहे। अतः यह दिन हम वन-दिवस के रूप में मनाने का संकल्प करते हैं।

पेड़ों को संरक्षण मिलना चाहिए

"पेड़ काटने की जो बात है, वह अखिल भारत सवाल है। पेड़ कटेंगे तो बहुत नुकसान होगा। पेड़ों को संरक्षण मिलना चाहिए। यह बहुत आवश्यक है। इसलिए उस काम को लेना हो तो अखिल भारत स्तर पर लेना होगा। इससे ऊपर राजस्थान में हमारे लोगों ने नयी बात शुरू की है, "पेड़ लगाओ"।

—सन्त विनोबा भावे

[ब्रह्मविद्या मंदिर, पवनार में ३ नवम्बर '७३ को स्वामी चिदानन्द जी से हुई बातचीत में]

आनन्दसिंह नेगी के प्रबन्ध से नवभारत प्रिंटिंग प्रेस, सहारनपुर में मुद्रित